श्री माणिक्यनंदी आचार्य कृत

परीक्षा मुख

(अध्याय-1)

शरदपूर्णिमा महोत्सव-2012, पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी
के 61वें त्यागदिवस के अवसर पर घोषित चारित्रवर्धनोत्सव
वर्ष 2012-2013 के अन्तर्गत प्रकाशित

गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती दिगम्बर जैन
पत्राचार परीक्षा केन्द्र
अन्तर्गत-दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र., फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

वीर नि. सं. 2539, माघ कृ. चतुर्दशी, 9 फरवरी 2013
मूल्य-10/-रु.

प्रवेशिका (तृतीय खण्ड) कोर्स पुस्तक, विषय-न्याय

गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती दिगम्बर जैन पत्राचार परीक्षा केन्द्र के विषय में आवश्यक जानकारी

ज्ञानपिपासु महानुभावों! जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर संस्थान द्वारा "गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती दिगम्बर जैन पत्राचार परीक्षा केन्द्र" का शुभारंभ वर्ष-2012 से किया गया है। इस परीक्षा केन्द्र की स्थापना का मुख्य उद्देश्य जैन श्रावक-श्राविकाओं को धर्म के ज्ञान से अभिसिंचित करना एवं उन्हें समाज में लब्ध प्रतिष्ठित करने हेतु विशेष डिग्री के माध्यम से सम्मानित करना है। इस परीक्षा केन्द्र के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के डिग्री कोर्स का शुभारंभ किया गया है, जिसे 12 वर्ष से अधिक उम्र के श्रावक-श्राविकाएँ ज्ञानाराधना के लिए ज्वाइन कर सकते हैं।

अवश्य पढ़ने योग्य नियमावली

कोर्स से संबंधित सामान्य जानकारी-

(1) परीक्षा केन्द्र द्वारा यह धार्मिक परीक्षा प्रणाली "पत्राचार कोर्स" के रूप में प्रारंभ की गई है।

(2) किसी भी कोर्स में भाग लेने हेतु प्रवेश 'निःशुल्क' रखा गया है।

(3) परीक्षा में भाग लेने के लिए उम्र सीमा 12 वर्ष से अधिक रखी गई है। जैनधर्म के ज्ञान का अर्जन करने के इच्छुक प्रत्येक श्रावक-श्राविकाएँ इसमें भाग ले सकते हैं।

(4) समस्त परीक्षाएँ पत्राचार के माध्यम से घर बैठे दी जा सकती हैं।

(5) परीक्षा में प्रवेश पाने हेतु वर्ष के दिसम्बर माह के अंतिम सप्ताह तक प्रवेश फार्म भरकर परीक्षार्थी को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के पते पर आवश्यक रूप से पहुँचाना होगा।

(6) प्रवेश फार्म भरने के उपरांत आपको संस्थान द्वारा रोल नम्बर आदि के साथ विशेष प्रवेश-पत्र भेजा जायेगा, जिसे परीक्षा तक संभालकर रखना होगा।

(7) परीक्षा के प्रश्न-पत्र जून के अंतिम सप्ताह में संस्थान द्वारा डाक से आपके घर पहुँचाये जायेंगे।

(8) प्रश्नपत्र में उत्तर लिखने के उपरांत 15 जुलाई तक आपको उत्तर-पुस्तिका जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के कार्यालय पर रजिस्टर्ड डाक द्वारा पहुँचाना अनिवार्य रहेगा।

(9) उत्तर पुस्तिका की जाँच जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के विद्वानों द्वारा की जायेगी और प्रमाण-पत्र के माध्यम से आपको परिणाम फल पहुँचाया जायेगा।

परीक्षा कोर्स एवं प्रवेश फार्म मंगाने हेतु संपर्क करें-

जीवन प्रकाश जैन, हस्तिनापुर (संयोजक)

मो.-09411025124

विषयानुक्रमणिका

—:o:—

आद्य निवेदन	२	कलकत्ता प्रथमा के प्रश्नपत्र	१६
ग्रन्थकार का परिचय	३	विषय सूची	१७
परीक्षामुख के प्रश्नपत्र	१४	परीक्षामुखसूत्रसूची	२२ से ३२

अथ प्रथमः परिच्छेदः

ग्रन्थकार की प्रतिज्ञा	३३
प्रमाण का लक्षण	३४
प्रमाण का लक्षणान्तर	३५
प्रमाण का निश्चयात्मकपना	३६
अपूर्वार्थ का लक्षण	३७
अपूर्वार्थ का दूसरा लक्षण	३७
स्वव्यवसाय का समर्थन	३८
स्वव्यवसाय का दृष्टान्त	३८

पदार्थ को जानने के समय होने वाली प्रतीति ३८
केवल परव्यवसाय का खण्डन ३९
शब्दोच्चारण बिना ही स्वव्यवसाय का स्पष्टीकरण ४०
शब्दोच्चारण बिना स्वप्रतीति ४१
स्व की प्रतीति का उदाहरण ४१
प्रमाण के प्रामाण्य का निर्णय ४२

परीक्षामुखसूत्रसूची

प्रमाणादर्थसंसिद्धिस्तदाभासाद्विपर्ययः ।
इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्पं लघीयसः ॥ १ ॥

अथ प्रथमः समुद्देशः

सूत्र		पृष्ठ.
१	स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्.	३४
२	हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्.	३५
३	तन्निश्चयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवत्.	३६
४	अनिश्चितो ऽपूर्वार्थः.	३७
५	इष्टो ऽपि समारोपात्तादृक्.	३७
६	स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः	३८
७	अर्थस्येव तदुन्मुखतया	३८
८	घटमहमात्मना वेद्मि.	३८
९	कर्मवत् कर्तृकरणक्रियाप्रतीतेः	३९
१०	शब्दानुच्चारणे ऽपि स्वस्यानुभवनमर्थवत्	४०
११	को वा तत्प्रतिभासिनमर्थमध्यक्षमिच्छँस्तदेव तथा नेच्छेत्	४१
१२	प्रदीपवत्	४१
१३	तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च	४२

❀ श्री जिनाय नमः ❀

आचार्यप्रवर श्रीमाणिक्यनन्दिविरचित

परीक्षामुख

ग्रन्थकार की प्रतिज्ञा और उद्देश्य—

प्रमाणादर्थसंसिद्धि - स्तदाभासाद्विपर्ययः ।
इति वक्ष्ये तयो र्लक्ष्म, सिद्धमल्पं लघीयसः ॥ १ ॥

अर्थ :—प्रमाण (सच्चे ज्ञान) से पदार्थों का निर्णय होता है और प्रमाणाभास (झूठेज्ञान) से पदार्थों का निर्णय नहीं होता। इसलिये मन्दबुद्धि वाले बालकों के हितार्थ उन दोनों के संक्षिप्त और पूर्वाचार्यप्रसिद्ध लक्षण कहता हूं।

संस्कृतार्थ :—प्रमाणात् (सम्यग्ज्ञानात्)पदार्थानां निर्णयः प्रमाणाभासात् (मिथ्याज्ञानात) पदार्थानामनिर्णयश्च जायते। अतो मन्दमतीनां बालकानां प्रबोधाय तयोः प्रमाणप्रमाणाभासयोः संक्षिप्तं पूर्वाचार्यप्रसिद्धम्वा लक्षणमहं ग्रन्थकारो वक्ष्ये।

विशेषार्थः-मा-अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग लक्ष्मी। आण-शब्द अर्थात् दिव्यध्वनि। प्र—उत्कृष्ट। मा च आणश्च माणौ, प्रकृष्टौ माणौ यस्य सः प्रमाणः। उत्कृष्टलक्ष्मी और उत्कृष्टवाणी सहित व्यक्ति अरिहन्त भगवान् ही हैं। क्योंकि अनन्तचतुष्टय रूप अन्तरङ्ग और समवसरणादिरूप बहिरङ्ग लक्ष्मी अन्य हरिहरादिक के सम्भव नहीं। तथा प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण से निर्बाध दिव्यध्वनि भी अन्य के सम्भव नहीं। इस प्रकार यहां प्रमाण शब्द का अर्थ 'अरिहन्त' हुआ। उनके असाधारण गुण

दिखाना ही उनकी स्तुतिरूप मंगल हुआ। प्रमाणाभास-हरि-हरादिक।

प्रमाणस्य लक्षणम्, प्रमाण का लक्षण—

स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम् ॥ १ ॥

अर्थ—अपना और अपूर्वार्थ का निश्चायकज्ञान प्रमाण कहलाता है।

संस्कृतार्थः—यत्स्वमन्यपदार्थान्वा विजानाति तत्, अथवा यत् स्वस्वरूपस्य पदार्थान्तरस्वरूपस्य वा निर्णयं विदधाति तदेव प्रमाणं (सम्यग्ज्ञानं) प्रोच्यते।

तथा चानुमानम्-प्रमाणं स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकज्ञान-मेव, प्रमाणत्वात्, यत्तु स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकज्ञानं न भवति तन्न प्रमाणं, यथा संशयादिः घटादिश्च, प्रमाणं च विवादापन्नं, तस्मात्स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकज्ञानम् ॥ १ ॥

विशेषार्थ :—जो अपने आपको जानता है और अन्य

प्रमाणलक्षणकारकसूत्र नं० २ के पदों का सार्थक्य—

१—अज्ञानरूप सन्निकर्ष, कारकसाकल्य और इन्द्रियप्रवृत्ति के प्रमाणता के निराकरण के हेतु ज्ञानपद दिया गया है।

२—निर्विकल्पकज्ञान को प्रमाणता के निराकरण के हेतु व्यवसायपद दिया गया है।

३—विज्ञानाद्वैतवाद, ब्रह्माद्वैतवाद तथा शून्यैकान्तवाद को प्रमाणता के निराकरण के हेतु अर्थपद दिया गया है।

४—गृहीतग्राही धारावाही ज्ञान को प्रमाणता के खण्डन के हेतु अपूर्वविशेषण दिया गया है।

५—अस्वसम्वेदनज्ञान को प्रामाणिकता के निषेध के हेतु प्रमाण के लक्षण में स्वविशेषण दिया गया है।

पदार्थों को भी जानता है अर्थात् अपने स्वरूप का तथा पर पदार्थों के स्वरूप का निर्णय करता है वही प्रमाण या सच्चा ज्ञान कहा जाता है।

'व्यतिकीर्णवस्तुव्यावृत्तिहेतु र्लक्षणम्' मिली हुई अनेक वस्तुओं में से जुदे कराने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं।

प्रमाण का लक्षणान्तर या ज्ञान का प्रमाणपना—

हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्।

अर्थ :—जो सुख की प्राप्ति तथा दुःख के दूर करने में समर्थ होता है उसे प्रमाण कहते हैं। ऐसा वह प्रमाण 'ज्ञान' ही हो सकता है, अन्य सन्निकर्ष आदिक नहीं ॥ २ ॥

संस्कृतार्थ :—इन्द्रियार्थयोः सम्बन्धः सन्निकर्षः। स च सन्निकर्षोऽचेतनो विद्यते। अचेतनाच्च सुखावाप्तिः दुःखविनाशो वा न जायते, अतः सन्निकर्षः प्रमाणं नो भवेत्। परन्तु ज्ञानात्सुखावाप्तिः दुखविनाशो वा जायते, अतो ज्ञानमेव प्रमाणम् यत· सुखावाप्तौ दुःखविनाशे वा यत् समर्थं तदेव प्रमाणं प्रोक्तम।

अस्यानुमानप्रयोगश्चेत्थम्— प्रमाणं ज्ञानमेवेति प्रतिज्ञा, हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थत्वादिति हेतुः हिताहितप्राप्तिपरिहार-समर्थं हि ज्ञानं, नान्यत्, यथा घटादयः इत्युदाहरणम्। तथा चेदमित्युपनयः। तस्मात्तथेति निगमनम्।

विशेषार्थः—इन्द्रिय और पदार्थों का सम्बन्ध सन्निकर्ष कहलाता है। वह सन्निकर्ष अचेतन होता है और अचेतन (जड़) से सुख की प्राप्ति तथा दुःख का परिहार होता नहीं। इस कारण सन्निकर्ष प्रमाण नहीं हो सकता। परन्तु ज्ञान से सुख की प्राप्ति और दुःख का परिहार होता है, इसलिये ज्ञान प्रमाण है।

'प्रकर्षेण मीयतेऽनेन' इति प्रमाणम्। अर्थात् जो संशय,

विपर्यय और अनध्यवसायरहित होकर वस्तु के स्वरूप को जानता है वह प्रमाण कहलाता है।

प्रमाणस्य निश्चायकत्वम्, प्रमाण का निश्चायक पना—

तन्निश्चयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवत् ॥३॥

अर्थ :—वह प्रमाण निश्चयात्मक (स्व और पर का निश्चय कराने वाला) होता है, समारोप (संशय, विपर्यय तथा अनध्यवसाय) रहित होने से, अनुमान की तरह।

संस्कृतार्थ :—यथा समारोपविरुद्धत्वाद् बौद्धाङ्गीकृतमनुमानं तन्मते निश्चयात्मकं तथार्हन्मते समारोपविरुद्धत्वात्प्रमाणमपि निश्चयात्मकम् ॥ ३ ॥

विशेषार्थ :—बौद्ध अनुमान को पदार्थों का निश्चय करने वाला मानता है और प्रत्यक्ष को निर्विकल्पक अर्थात् अनिश्चायक (निश्चय नहीं करने वाला) मानता है। परन्तु जैनों ने सभी प्रमाणों को स्व और पर का निश्चायक (निश्चय करने वाला) माना है। यही बतलाने के लिये बौद्धों के द्वारा माने हुये अनुमान का दृष्टांत देकर सभी प्रमाणों को निश्चयात्मक सिद्ध किया गया है। जब कि अनुमान को निश्चयात्मक माना है तो प्रत्यक्ष को भी निश्चयात्मक मानना चाहिये। क्योंकि जो किसी पदार्थ का तथा अपना निर्णय निश्चयरूप से नहीं करेगा वह प्रमाण कैसे हो सकता है ?

१—दो तरफ ढलता हुआ निर्णयरहित (अनिश्चित) ज्ञान संशय कहलाता है। जैसे यह सीप है या चांदी, ठूंठ है या पुरुष इत्यादि। २—उल्टाज्ञान विपर्यय कहलाता है। जैसे रस्सी में सांप का या सुवर्ण में पीतल का ज्ञान। ३—अनिश्चित तथा विकल्प (इच्छा) रहित ज्ञान अनध्यवसाय कहलाता है। जैसे चलते समय स्पर्श हुये पत्थर या तृण वगैरह में 'कुछ है' ऐसा ज्ञान।

अपूर्वार्थस्य समर्थनम्, अपूर्वार्थ का समर्थन या लक्षण—

अनिश्चितो ऽपूर्वार्थः ॥ ४ ॥

अर्थः—जिस पदार्थ का पहिले कभी किसी सच्चे ज्ञान से निर्णय नहीं हुआ हो उसे अपूर्वार्थ कहते हैं। प्रमाण ऐसे अपूर्वार्थ का निश्चय करता है। अतः जो ज्ञान किसी प्रमाण से जाने हुये पदार्थ को जानता है वह प्रमाण नहीं होता, क्योंकि उसने उस पदार्थ का निश्चय नहीं किया, किन्तु निश्चित ही को जाना है।

संस्कृतार्थ :—कस्माच्चिदपि सम्यग्ज्ञानाद् यस्य पदार्थस्य कदापि निर्णयो न जातः सः अपूर्वार्थो निगद्यते। प्रमाणं तमेव निश्चिनोति। अतो यज्ज्ञानं कस्माच्चित्प्रमाणाद् विज्ञातं पदार्थं विजानाति तन्न प्रमाणम्। यतस्तेन तस्य पदार्थस्य निश्चयो न विहितः, किन्तु निश्चितमेव विज्ञातम् ॥ ४ ॥

विशेषार्थ :—ईहाज्ञान यद्यपि अवग्रहादिक के द्वारा ज्ञात पदार्थ को ही जानता है परन्तु अवग्रहादिक जिस विशेष को नहीं जान सकते हैं उस अवान्तर विशेष (अन्यावशेष) को जानता है इसलिये ईहा का विषय अपूर्वार्थ ही है।

अपूर्वार्थस्य लक्षणान्तरम्, अपूर्वार्थ का दूसरा लक्षण—

दृष्टो ऽपि समारोपात्तादृक् ॥ ५ ॥

अर्थ :—किसी प्रमाण से जाने हुये पदार्थ के विषय में भी जब संशय, विपर्यय या अनध्यवसाय हो जाता है तब वह पदार्थ भी अपूर्वार्थ कहा जाता है। और उसका जानने वाला ज्ञान भी प्रमाणस्वरूप होता है।

संस्कृतार्थ :—केनापि प्रमाणेन विज्ञातेऽपि पदार्थे यदा संशयो, विपर्ययः, अनध्यवसायो वा जायते तदा सोऽप्यपूर्वार्थो निगद्यते, तथा च तस्य वेदकं ज्ञानमपि प्रमाणस्वरूपं भवेत् ॥५॥

स्वव्ययसायस्य समर्थनम्, स्वव्यवसाय का समर्थन—

स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः ॥ ६ ॥

अर्थ :—अपने आपके अनुभव से होने वाले प्रतिभास को स्वव्यवसाय (स्वस्वरूप का निश्चय) कहते हैं। इसमें मैं अपने को जानता हूँ' ऐसी प्रतीति होती है।

संस्कृतार्थ :—स्वस्योन्मुखतया प्रतिभासनं स्वव्यवसायो निगद्यते। अत्र 'अहमात्मानं जाने' इति प्रतीति र्जायते ॥ ६ ॥

स्वव्यवसायस्य दृष्टान्तः, स्वव्ययसाय का दृष्टांत—

अर्थस्येव तदुन्मुखतया ॥ ७ ॥

अर्थ :—जिस प्रकार घट पट इत्यादि शब्दों का जब हमें ज्ञान होता है तब उस ज्ञान के विषयभूत उन उन पदार्थों का ज्ञान भी हमें अवश्य होता है। उसी प्रकार जब आत्मा की ओर लक्ष्य होता है तब आत्मा क्या चीज है इसका भी ज्ञान अवश्य हो जाता है।

संस्कृतार्थ :—यथा यदा घटपटादिशब्दानां प्रतीति र्जायते तदा तज्ज्ञानविषयभूतानां तत्तत्पदार्थानां ज्ञानमपि अस्माकमवश्यं जायते। तथा यदात्मानं प्रति लक्ष्यं जायते तदाऽऽत्मा किम्वस्तु विद्यते एतस्यापि ज्ञानमवश्यं जायते ॥ ७ ॥

पदार्थ को जानने के समय होने वाली प्रतीति—

घटमहमात्मना वेद्मि ॥ ८ ॥

अर्थ :—मैं अपने द्वारा घट को जानता हूँ। इस ज्ञान में अहम् और आत्मना पद से स्व का निश्चय होता है और घटम् पद से परपदार्थ घट का बोध होता है। इसी प्रकार प्रमाण से सर्वत्र स्व और पर का व्यवसाय होता है। इसलिये प्रमाण को स्व और पर का निश्चायक कहा है।

संस्कृतार्थ :—'घटमहमात्मना वेद्मि' इति प्रतीतौ 'अहम्' 'आत्मना' वेति पदाभ्यां स्वव्यवसायो जायते तथा घटम्पदेन परपदार्थबोधो जायते। तथैव प्रामाणेन सर्वत्र स्वस्य परस्य वा बोधो जायते। अतएव प्रमाणं स्वपरनिश्चायकं निगदितम् ॥८॥

विशेषार्थ :—मैं (कर्त्ता) घट को (कर्म) ज्ञान से (करण) और जानता हूँ (क्रिया)। ज्ञान के समय सर्वत्र इन चार बातों की प्रतीति होती है। उनमें 'मैं' करके अपनी प्रतीति होती है, इसी को ज्ञान के स्वरूप का निश्चय कहते हैं। क्योंकि यह आत्मा की प्रतीति है और वह आत्मा ज्ञानस्वरूप है। इस कारण 'मैं' पद के द्वारा ज्ञान अपने आप को जानता है। 'घट को' इस पद के द्वारा अपूर्वार्थ (परपदार्थ) की प्रतीति होती है। 'जानता हूँ' यह क्रिया की प्रतीति है, जिसे प्रमिति; अज्ञान निर्वृत्ति; ज्ञप्ति वा प्रमाणफल भी कहते हैं। और 'ज्ञान से' इस पद के द्वारा करणरूप प्रमाण की प्रतीति होती है जिसका फल अज्ञाननिवृत्ति है।

परव्यवसायकतामात्रस्य खंडनम्, केवल परव्यवसाय का खंडन-

कर्मवत्कर्तृकरणक्रियाप्रतीतेः ॥ ९ ॥

अर्थ :—प्रमाण के द्वारा जैसे घट पट इत्यादि रूप कर्म का बोध होता है उसी प्रकार कर्त्ता (मैं) करण (अपने द्वारा) और क्रिया (जानता हूँ) का भी बोध होता है। अर्थात प्रमाण के द्वारा जैसे मैं घटपटादिक को जानता हूँ ऐसी प्रतीति होती है उसी प्रकार कर्त्ता, करण और क्रिया के प्रति भी इन कर्त्ता आदिक को भी जानता हूं ऐसी प्रतीति होती है, इसमें बाधा नहीं, अनुभवसिद्ध है। इसलिये प्रमाण को केवल परव्यवसायक मानना ठीक नहीं है।

संस्कृतार्थ :— प्रमाणेन यथा घटपटादिरूपस्य कर्मणो

बोधो जायते तथैव कर्तुः, करणस्य, क्रियाया वा बोधो जायते। अर्थात् प्रमाणेन यथा 'अहं घटपटादिकं (कर्म) जाने' इति प्रतीति र्जायते तथा कर्तृ करणक्रियाः प्रत्यपि 'अहं कर्त्रादिकं जाने' इति प्रतीति र्जायते, नात्र काचिद्बाधा, अनुभवसिद्धं विद्यते ॥ ९ ॥

विशेषार्थ :—एक ही ज्ञान में कर्त्ता आदि अनेक कारकों की व्यवस्था भेदविवक्षा से घट जाती है। क्योंकि जैनसिद्धान्त स्याद्वाद है। विभिन्न अपेक्षा कृत वर्णन से विरोध नहीं आता, सर्वथा एकान्तवाद में ही यह विरोध सम्भव होता है। इस विवेचन से प्रमाण के विषय में नैयायिक और मीमांसक की मान्यताओं का खंडन किया गया है, जो प्रमेयरत्नमाला में स्पष्ट है।

✓शब्दोच्चारण बिना ही स्वव्यवसाय का स्पष्टीकरण—

✓ शब्दानुच्चारणेऽपि स्वस्यानुभवनमर्थवत् ॥ १० ॥

अर्थ :—जैसे प्रत्यक्ष रखी हुई घटपटादि वस्तुओं का और परोक्ष मोदक आदि वस्तुओं का तद्वाचक शब्द के उच्चारण बिना ही विचार या अवलोकन मात्र से ही ज्ञान में तदाकार अनुभव हो जाता है कि यह अमुकवस्तु है और यह अमुकवस्तु। उसी प्रकार 'मैं यह करूंगा' 'मेरे द्वारा यह हुआ' इत्यादि ज्ञान (विचार) में 'मैं और मेरे द्वारा' इत्यादि रूप से आत्मा का बोध (अनुभव) होता है, वह शब्दोच्चारण बिना भी होता है।

संस्कृतार्थ :—यथा प्रत्यक्षाणां घटपटादीनां वस्तूनां, परोक्षाणां मोदकादीनाम्वा तद्वाचकशब्दानुच्चारणेऽपि विचारमात्रेणैवालोकनमात्रेणैव वा ज्ञाने तदाकार अनुभवो जायते, यदिदममुकवस्तु विद्यते; इदं चामुकवस्तु। तथा 'अहमिदं करिष्ये' 'इदं मया जातम्' इत्यादि विचारे (ज्ञाने) 'अहं, मया' इत्यादि रूपेण यःस्वबोध जायते, सः शब्दोच्चारणं विनैव जायते ॥ १० ॥

विशेषार्थ :—इस विवेचन से 'कर्त्ता आदि का ज्ञान

शब्दोच्चारण से ही होता है' इस प्रकार मानने वालों की मान्यता का खण्डन किया गया है। यदि वे वाक्योच्चारण पक्ष में ऐसा मानते तो सत्य हो सकता था, परन्तु उनका ज्ञान को शब्दोच्चारणजन्य एकान्तरूप से कहना ठीक नहीं है।

शब्दोच्चारण बिना भी स्वप्रतीति की पुष्टि—

को वा तत्प्रतिभासिनमर्थमभ्यक्षमिच्छँस्तदेव तथा नेच्छेत्

अर्थ :—लौकिक या परीक्षक ऐसा कौन पुरुष है जो ज्ञान से प्रतिभासित हुये पदार्थों को तो प्रत्यक्षज्ञान का विषय माने, परन्तु स्वयं ज्ञान को प्रत्यक्ष नहीं माने, अर्थात् सभी मानेंगे, कि जब ज्ञान दूसरे पदार्थों का प्रत्यक्ष करता है तब अपना भी प्रत्यक्ष करता होगा। यदि अपने को नहीं जानता होता, तो दूसरे पदार्थों को भी नहीं जान सकता। जैसे घट वगैरह अपने आप को नहीं जानते, इसलिये दूसरों को भी नहीं जानते हैं।

संस्कृतार्थ :—यदा ज्ञानं परपदार्थप्रत्यक्षं करोति तदा स्वस्य प्रत्यक्षमपि तस्यावश्यं स्यात्। यदि च स्वं न जानीयात्तर्हि परपदार्थान् ज्ञातुमपि न शक्नुयात्। यथा घटादयः स्वं न जानन्त्यतः परमपि न जानन्ति। इति स्थितौ को लौकिकः परीक्षको वा जनो ज्ञानप्रतिभासिनमर्थं प्रत्यक्षं स्वीकुर्वन् स्वयं ज्ञानं प्रत्यक्षं नो स्वीकुर्यात्? ॥ ११ ॥

विशेषार्थ :—जो यह कहेगा कि मैं घट का प्रत्यक्ष कर रहा हूं उसको 'मैं' शब्दके वाच्य ज्ञानका भी प्रत्यक्ष मानना होगा।

स्वप्रतीतिपुष्टेरुदाहरणम्, स्व की प्रतीतिकी पुष्टिका उदाहरण—

प्रदीपवत् ॥ १२ ॥

अर्थ :—जैसे दीपक घट पट आदि दूसरे पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ अपने आप (दीपक) को भी प्रकाशित

करता है, वैसे ही ज्ञान घट पट आदि को जानता हुआ अपने आप को भी जानता है।

संस्कृतार्थ :—यथा दीपको घटपटादिकं परपदार्थं प्रकाशयन् स्वम् (दीपकम्) अपि प्रकाशयति तथैव ज्ञानमपि घटपटादिपरपदार्थं जानत्सत् स्वमपि जानाति ॥ ११ ॥

विशेषार्थ :—घटपटादिक का प्रकाशक दीपक यदि अपने आपको प्रकाशित नहीं करता तो उसके प्रकाशन के लिये दूसरे दीपक की आवश्यकता होती; परन्तु होती नहीं है। इस से सिद्ध होता है कि दीपक स्व और पर का प्रकाशक है। क्योंकि सर्वत्र दृष्ट पदार्थों से ही अदृष्ट पदार्थों की कल्पना की जाती है।

प्रमाण के प्रामाण्य का निर्णय—

तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च ॥ १३ ॥

अर्थ :—उस प्रमाण का प्रामाण्य (सचाई, वास्तविकता या पदार्थ का यथावत् जानने का निर्णय) दो प्रकार से होता है। अभ्यास दशा में अन्य पदार्थ की सहायता बिना अपने आप और अनभ्यास दशा में अन्य कारणों की सहायता से।

संस्कृतार्थ :—तस्य प्रमाणस्य प्रामाण्यस्य (सत्यतायाः वास्तविकतायाः, यथावद्विज्ञतायाः वा) निर्णयः प्रकारद्वयेन जायते। अभ्यासदशायामन्यपदार्थसहायतां बिना स्वतः, अनभ्यासदशायाञ्चान्यकारणानां सहायतायाः ॥ १३ ॥

विशेषार्थ :—जहां निरन्तर जाया आया करते हैं, वहां के नदी और तालाब आदि स्थानों के परिचय को अभ्यासदशा कहते हैं। इस स्थान में प्रामाण्य का निर्णय स्वतः हो जाता है। और जहां कभी गये आये नहीं वहां के नदी और तालाब आदि स्थानों के अपरिचय को अनभ्यासदशा कहते हैं। ऐसे स्थानों में दूसरे कारणों से ही प्रामाण्य का निर्णय होता है।

जैसे कोई व्यक्ति सदा द्रोणगिरि जाया करता है और वहां के रास्तेमें जितने कूप तथा तड़ाग वगैरह आते हैं सबको भली भांति जानता है। वह जब जब वहां जाता है तब तब पूर्व के परिचित चिह्नों को देखते ही जान लेता है कि यहां जल है और उन्हीं चिह्नों से यह भी जान लेता है; कि मुझे जो ज्ञान हुआ है वह बिलकुल ही ठीक है। इसमें यही प्रमाण है कि वह व्यक्ति ज्ञान होने के बाद ही शीघ्रता से कुआ या तालाब में लोटा डोबने लग जाता है। अगर उसे अपने ज्ञान की सचाई नहीं होती तो कभी ऐसा नहीं कर सकता था। इससे निश्चय होता है कि अभ्यासदशा में स्वतः ही प्रामाण्य का निश्चय होता है।

एक दूसरा व्यक्ति पहली ही वार द्रोणगिरि गया और रास्ते में जैसे अन्य जलाशयों पर चिह्न होते हैं वैसे चिह्न देखे, तब उसे ज्ञात हुआ कि यहां जल है। परन्तु यह निर्णय नहीं कर सका कि किस खास स्थान पर जल है। अर्थात् ५० गज इस तरफ है या उस तरफ। इसके बाद जब वह देखता है कि अमुक ओर से स्त्रियां पानी लिये आ रही हैं अथवा शीतल और सुगन्धित वायु आ रही है तब वह जान लेता है कि यह मेरा 'जलज्ञान' सच्चा है। यदि सच्चा नहीं होता; तो ये स्त्रियां जल लेने को नहीं आतीं। फिर वह ५० गज आगे जा कर कुआ में लोटा डोब कर पानी भर लेता है। उसका पहला ज्ञान यद्यपि सत्य था, परन्तु उस सत्यता का निर्णय दूसरे ही कारणों से हुआ। इससे मालूम होता है कि अनभ्यासदशा में प्रामाण्य का निर्णय परतः होता है।

इति प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः।